शर्त है। इसके लिए जनसाधारण में चेतना और उसकी सामूहिक भागीदारी आवश्यक है। पर्यावरण परिरक्षण का वातावरण सारी दूनियां में बनाना भी जरूरी है। इस कार्य को धर्मगुरु तथा समाज सेवा में ईमानदारी से संलग्न स्वयंसेवी संस्थायें प्रभावी ढंग से निबाह सकती हैं। इस अभियान के लिए अगर नई पीढ़ी को स्कूल-स्तर पर तैयार किया जाये तो यह दुष्कर कार्य सचमुच सुलभ हो सकता है। संसार की सुरक्षा हेतु जैन धर्म का अहिंसा-सिद्धान्त अब क्रियात्मक रूप से व्यवहार में लाना अनिवार्य है।

संदर्भिका

१. समाज और पर्यावरण–अनु. जगदीश चन्द्र पाण्डेय : प्रगति प्रकाशन, मास्को।

२. "विश्व-इतिहास की झलक" (भाग-२)–जवाहरलाल नेहरू : सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली।

3. Ecology and the Politics of Survival—Vandana Shiva : United Nations University Press, Japan.

4. The State of India's Environment (1984-85): The Second Citizens Report : Centre For Science and Environment, N. Delhi.

5. Survey of the Environment 1992 : The HINDU

6. Lectures and articles of Shri Sunder Lal Bahuguna.

पता :
से.नि. एसोसिएट प्रोफेसर (जूलोजी)
१०८, 'जय जवान' कॉलोनी, टोंक रोड,
जयपुर (राज.)

जैन धर्म और पर्यावरण-सन्तुलन

–पं. मुनिश्री नेमिचन्द्र जी महाराज
(अहमदनगर)

असन्तुलन का कारण : प्रकृति की व्यवस्था में हस्तक्षेप

अनादिकाल से सारा संसार जड़ और चेतन के आधार पर चल रहा है। प्रकृति अपने तालबद्ध तरीके से चलती है। दिन और रात तथा वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर ये छह ऋतुएँ एक के बाद एक क्रमशः समय पर आती हैं, और चली जाती हैं। गर्मी के बाद वर्षा और वर्षा के बाद सर्दी न आए तो संसार का सन्तुलन बिगड़ जाता है; जनता में हाहाकार मच जाता है। प्रकृतिजन्य तमाम वस्तुएँ अपने नियमों के अनुसार चलती हैं, तभी संसार में सुख-शान्ति और अमन-चैन रहता है।

परन्तु मनुष्य एक ऐसा प्राणी है, जो प्रकृति की इस व्यवस्था में हस्तक्षेप करता है; प्राकृतिक नियमों को जानता-बूझता हुआ भी अपनी अज्ञानतावश उनका उल्लंघन करता है, और अव्यवस्था पैदा करता है। वह वैज्ञानिक प्रगति के नाम पर अथवा अपने असंयम से प्रकृति के इस सहज सन्तुलन को बिगाड़ने का खतरा पैदा करता है। इसी के फलस्वरूप कहीं अतिवृष्टि, कहीं अनावृष्टि, कहीं बाढ़ और कहीं भूकम्प तो कहीं तूफान और सूखा, ये सब प्राकृतिक प्रकोप पैदा होते हैं, इससे प्रकृति का जो सहज पर्यावरण है, उसका सन्तुलन बिगड़ जाता है। इन सब प्राकृतिक प्रकोपों के कारण लाखों आदमी काल के गाल में चले जाते हैं, लाखों बेघरबार हो जाते हैं, हजारों मनुष्य पराधीन और अभाव पीड़ित होकर जीते हैं, यह सारी विषमता और अव्यवस्था मनुष्य के द्वारा प्रकृति के साथ छेड़छाड़ करने के परिणामस्वरूप पैदा होती है। कभी तो वह समुद्र में बम-विस्फोट करता है, कभी वह लाखों मनुष्यों से आबाद शहर पर बम फेंकता है; कभी वह जहरीली गैस छोड़ कर अपनी ही जाति का सफाया करने पर उतारू हो जाता है। कभी उसके द्वारा उपग्रह छोड़ने के भयंकर प्रयोगों के कारण अतिवृष्टि, आँधी, तूफान या भूस्खलन आदि प्राकृतिक प्रकोप होते हैं।

प्रत्येक तीर्थङ्कर ने जीव-अजीव दोनों पर संयम की प्रेरणा दी

जैन धर्म के युगादि तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर तक सबने प्रकृति के साथ संतुलन रखने हेतु तथा पृथ्वीकायिक आदि समस्त जीवों के साथ परस्पर उपकार करने हेतु संयम का उपदेश दिया है। उन्होंने जैसे जीवकाय के प्रति संयम रखने की प्रेरणा दी है, वैसे अजीवकाय (जड़ प्रकृतिजन्य वस्तुओं या पुद्गलों) के प्रति भी संयम रखने की खास प्रेरणा दी है।[१]

परन्तु वर्तमान युग का अधिकांश मानव समूह इस तथ्य को नजरअंदाज करके जीवकाय और अजीवकाय दोनों प्रकार के पर्यावरण-सन्तुलन के लिए उपयोगी सजीव-निर्जीव पदार्थों के प्रति अधिकाधिक असंयम करके, अन्धाधुंध रूप से सन्तुलन बिगाड़ने का पराक्रम करके प्रदूषण फैला रहा है। अमेरिकी राष्ट्रीय विज्ञान एकादमी (१९६६) के अनुसार–"वायु, पानी, मिट्टी, पेड़-पौधे और जानवर सभी मिलकर सुन्दर पर्यावरण या स्वच्छ वातावरण की रचना करते हैं। ये सभी घटक पारस्परिक सन्तुलन बनाये रखने के लिये एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं, जिसे 'परिस्थिति-विज्ञान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्धी सन्तुलन' कहते हैं। जब (भौतिक) विकास के लिए प्रकृति का सीमा से अधिक असंतुलित उपयोग किया जाता है, तब हमारे पर्यावरण या वातावरण में कुछ परिवर्तन होता है। यदि इन परिवर्तनों की प्रक्रिया का प्रकृति के साथ सामंजस्य नहीं बिठाया जाता और परिस्थिति विज्ञान सम्बन्धी सन्तुलन कायम नहीं रखा जाता तो उससे न केवल विकास व्यय (विकास कार्य में समय, शक्ति और नैतिकता के अपव्यय) के बढ़ने का खतरा पैदा होता है, बल्कि उससे ऐसा असन्तुलन पैदा हो सकता है, जिससे पृथ्वी पर मनुष्य जाति का जीवन खतरे में पड़ सकता है।'' इसी प्रकार का असन्तुलन प्रदूषण फैलाता है।

प्रकृति और जीवों के साथ मनुष्य का सम्बन्ध

यह एक निश्चित तथ्य है कि प्राकृतिक पदार्थों तथा जिनमें जीवन का अस्तित्व है, चेतना है, ऐसे सजीव पदार्थों का मानव जीवन के साथ गहरा सम्बन्ध है। जिस प्रकार भगवद्‌गीता में कहा गया है-'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ'-[२] सभी सजीव-निर्जीव पदार्थ परस्पर एक-दूसरे के साथ आत्मीय भाव अथवा अपने जीवन के लिए सहायक मानकर चलेंगे तो परम श्रेय को प्राप्त करेंगे। इसी प्रकार जैनाचार्य उमास्वाति ने भी तत्त्वार्थसूत्र में कहा-'परस्परोपग्रहो जीवानाम्'-[३] जीवों का स्वभाव परस्पर दूसरे पर उपग्रह-उपकार करना होना चाहिए।'' यही कारण है कि जैनधर्म के अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर ने कहा-''धम्मं चरमाणस्स पंच निस्सा ठाणा पण्णत्ता, तं जहा-छकाए गणे राया गिहवइ सरीरं।''[४] जो व्यक्ति आध्यात्मिक धर्म का आचरण (साधना) करना चाहता है, उसके लिए निम्नोक्त पाँच स्थानों का आश्रय (आलम्बन) लेना बताया गया है। जैसे कि-षट्कायिक जीव, गण, शासक, गृह-पति और शरीर। इस सूत्र में छह कांया के जीवों (अर्थात्-एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के समस्त जीवों) के आश्रय को प्राथमिकता दी गई है। दूसरे दर्शन या धर्म जहाँ पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति में जीवन का अस्तित्व प्रायः स्वीकार नहीं करते, वहाँ जैनधर्म ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में भी जीवन का अस्तित्व स्वीकार किया है। आज का जीव विज्ञान (जिओलॉजी) भी इस निष्कर्ष से सहमत हो चुका है कि पृथ्वी, जल और वनस्पति में भी जीवन है, उनमें भी सुषुप्त चेतना है, वे भी हर्ष शोक का अनुभव करते हैं। जैन-आगमों में तो पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनसपतिकाय, इन पाँच स्थावर जीवों के बारे में बहुत विस्तार से निरूपण किया गया है। वे जीव कहाँ-कहाँ रहते हैं? उनका शरीर किस-किस प्रकार का है? वे कैसे-कैसे श्वासोच्छ्‌वास, आहार आदि ग्रहण करते हैं, उनका विकास ह्रास कैसे-कैसे होता है, उनकी उत्कृष्ट आयु कितनी-कितनी है? उनमें कितनी इन्द्रियाँ हैं, कितने प्राण हैं? इत्यादि सभी प्रश्नों पर बहुत गहराई से विचार प्रस्तुत किया गया है। साथ ही उनका साथ मानवजीवन का परस्पर उपकार और गहन सम्बन्ध भी बताया गया है। जिसे आगम के उद्धरण द्वारा प्रस्तुत किया गया है। प्रो. सी. एन. वकील ने अपनी पुस्तक-'इकोनॉमिक्स ऑफ काऊ प्रोटेक्शन' में बताया है-''हमें यह कभी न भूलना चाहिए कि मिट्टी, वनस्पति, पशु और मानव का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। जिस प्रकार मानव में जीवन है, पशु और वृक्ष आदि सजीव हैं, उसी प्रकार मिट्टी भी सजीव है। सुनने में यब बात भले ही अजीव लगे, पर अक्षरशः सत्य है। कोटि-कोटि अतिसूक्ष्म ऑर्गेनिज्म मिट्टी में सदा क्रियारत रहते हैं।''

सत्रह प्रकार का संयम-प्रदूषण निवारणार्थ

भगवान् महावीर ने जीव और अजीव दोनों प्रकार के पदार्थों के प्रति १७ प्रकार के संयम बताए हैं। वे इस प्रकार हैं-(१) पृथ्वीकाय-संयम, (२) अप्काय-संयम, (३) तेजस्काय-संयम, (४) वायुकाय-संयम, (५) वनस्पतिकाय-संयम, (६) द्वीन्द्रिय (जीव) संयम, (७) त्रीन्द्रिय-संयम, (८) चतुरिन्द्रिय-संयम, (९) पंचेन्द्रिय-संयम, (१०) अजीव-काय-संयम, (११) प्रेक्षा-संयम, (१२) उपेक्षासंयम, (१३) अपहृत्य-संयम, (१४) प्रमार्जनासंयम, (१५) मन-संयम, (१६) वचन-संयम और (१७) काय-संयम।[५] इन १७ प्रकार के संयमों का अर्थ ही पृथ्वीकाय आदि ९ प्रकार के जीवों के प्रति संयम रखना, उन जीवों को कष्ट हो, त्रास हो, ऐसी प्रवृत्ति न करना। अजीवकाय संयम में प्रकृतिजन्य सभी निर्जीव पदार्थों के प्रति संयम की प्रेरणा है। प्रेक्षा, उपेक्षा, अपहृत्य एवं प्रमार्जनारूप संयम में प्रत्येक प्रवृत्ति करते समय देखे, पूर्वापर का, परिणाम का विचार करे, जहाँ या जिस स्थान में अथवा जिस प्रवृत्ति से जीव हिंसा अधिक हो, जिससे अपने स्वास्थ्य, परिवार, संघ, राष्ट्र या समाज को हानि हो, उस प्रवृत्ति के प्रति उपेक्षा करे, जहाँ खींचना, खोदना, रगड़ना आदि घर्षण प्रवृत्ति हो, वहाँ भी संयम रखे, ताकि किसी जीव को पीड़ा न हो। मन से दूसरों को मारने, सताने, उत्पीडन करने का विचार न करे, वचन से भी शाप आदि का क्रोधादिपूर्वक आघातजनक वचन न बोले, न ही काया से अंगोपांगों से किसी पर प्रहार करने आदि हिंसाजनक कृत्य-चेष्टा करें। यह १७ प्रकार का संयम है।

पृथ्वी की हिंसा : पर्यावरण-असंतुलन तथा विनाश का हेतु

आज विभिन्न प्रकार के खनिज पदार्थों के लिए खासकर पत्थर के कोयलों के लिए पृथ्वी का खनन और जबर्दस्त दोहन किया जा रहा है। भूवैज्ञानिकों का मत है कि यदि इसी प्रकार खनिज पदार्थों का उपयोग किया गया तो कुछ ही वर्षों में उसके भण्डार निःशेष हो जायेंगे। संसार में जब से औद्योगीकरण की लहर आई है, पृथ्वी का पेट फाड़ कर कोयले निकालते रहने से पत्थर के कोयलों के जलाने से उनकी धूल, कार्बन-डाइ- ऑक्साइड, सल्फर डाइ-ऑक्साइड तथा कुछ ऑर्गनिक गैसों के रूप में प्रदूषणकारी पदार्थों की भरमार हो गई है। इसी प्रकार बारूदों के द्वारा जिस जमीन में विस्फोट किया जाता है, वह जमीन नीचे धसती जाती है, कहीं-कहीं इसी के फलस्वरूप भूकम्प, नदियों में बाढ़, तूफान, समुद्र में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मछलियों का मर जाना, धरती का खराब हो जाना आदि प्रकोप हो जाते हैं।

इन सब दुष्कृत्यों से दूर रहने के लिए भगवान् महावीर ने आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले सद्गृहस्थों के लिए "स्फोटकर्म" (फोड़ीकम्मे) यानी जमीन में विस्फोट करने के खरकर्म का सर्वथा (तीन करण-करना कराना और अनुमोदन रूप से तथा तीन योग-मन-वचन-काया से) निषेध किया था।[६] इसी तरह पृथ्वीकायिक (पृथ्वी ही जिसका शरीर है, उन) जीवों को नष्ट करने, सताने, गहरे खोदने, फोड़ने आदि के रूप में हिंसा का निषेध करते हुए कहा था–"मेधावी पुरुष हिंसा के दुष्परिणाम को जानकर स्वयं पृथ्वी-शस्त्र का समारम्भ न करे, न ही दूसरों से उसका समारम्भ (घात) कराए और न समारम्भ करने वाले का अनुमोदन करे।[७] मनुष्य पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा के साथ केवल पृथ्वीकायिक जीवों की ही नहीं, अन्य अनेक तदाश्रित या तत्सम्बन्धित प्राणियों की हिंसा करता है, अतः पृथ्वीकायिक हिंसा से महाहानि की ओर इंगित करते हुए उन्होंने कहा था–"नाना प्रकार के शस्त्रों (द्रव्यशस्त्रों तथा भावशस्त्रों) से पृथ्वी-सम्बन्धी हिंसाजन्य कर्म में व्यापृत होकर पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा करने वाला व्यक्ति (न केवल उन पृथ्वीकायिक जीवों की ही हिंसा करता है, अपितु) अन्य अनेक प्रकार के जीवों की भी हिंसा करता है।[८] यह ध्यान रहे कि जैनधर्म जहाँ प्राणिमात्र की दृष्टि से विनाश और जीवसृष्टि की महाहानि की दृष्टि से अहिंसा और संयम पर विचार प्रस्तुत करता है, वहाँ विज्ञान उस पर प्रदूषण एवं प्राणिजगत् के लिए दुःखवृद्धि तथा केवल मनुष्यमात्र की दृष्टि से विचार करता है। किन्तु परिणाम की दृष्टि से दोनों एक ही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

अग्निकाय से होने वाला प्रदूषण

अग्निकाय की हिंसा से होने वाला प्रदूषण भी वायु-प्रदूषण से सम्बन्धित है। ऑक्सीजन जीने के लिए आवश्यक है। किन्तु इन्धन और वायु के प्रदूषण से वायुमण्डल की ओजोन परत को चोट पहुँचती है, और ओजोन परत के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने से पृथ्वी पर जीवधारियों का जीवन खतरे में पड़ सकता है।

अतः अग्निकाय की हिंसा अग्निकाय की ही हिंसा नहीं है; अपितु उसके आश्रित या सम्बन्धित अनेक जीवों का विनाश, धन-जन हानि तथा वातावरण (पर्यावरण) का असन्तुलन भी अवश्यम्भावी है। इस तथ्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है, झरिया (धनवाद) की कोयले की खान, जहाँ खान में काम करने वाले अनेक खनिक मौत के मुँह में चले गए, उस खान में कई वर्षों से आग लगी हुई है। अभी तक बुझी नहीं है। सरकार को वह खान बंद कर देनी पड़ी, और झरिया शहर खाली करने का नोटिस सभी नागरिकों को देना पड़ा। यहाँ का जन-जीवन भी इससे प्रभावित है। यही कारण है कि चौदहवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड जैसे शहरों में कोयला जलाने पर वहाँ की सरकार ने प्रतिबन्ध लगा दिया था। अतः यदि पृथ्वीकाय की ऐसी हिंसा और असंयम को बंद कर दिया जाए तो पूर्वोक्त प्रकार से धन-जन-विनाश भी बंद होगा, साथ ही वायु-प्रदूषण एवं पर्यावरण-असंतुलन पर भी काबू पाया जा सकेगा।

एक व्यक्ति पूरे साल में जितनी ऑक्सीजन का उपयोग करता है, उतनी ऑक्सीजन एक टन कोयला जलने से नष्ट हो जाती है. इतनी ही ऑक्सीजन १०० किलोमीटर दौड़कर एक मोटरगाड़ी खर्च कर देती है। इनसे अग्निकाय की हिंसा तो होती ही है, साथ ही अनेक प्राणियों के जीवन को भी खतरा पहुँचता है।

धूम्रपान भी अग्निकायिक हिंसा और वायुप्रदूषण का जबर्दस्त अंग है। धूम्रपान से दूसरों के जीवन को हानि तो पहुँचती ही है, पीने वाले व्यक्ति की धीरे-धीरे आत्महत्या भी हो जाती है। ब्रिटिश मेडिकल सर्जन्स की २५ अगस्त, १९७४ की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि सिगरेटों के निर्माण में करीब ढाई हजार पौण्ड वार्षिक व्यय होता है, वहाँ १९७४ में एक वर्ष में ३७००० व्यक्ति इसके कारण होने वाले रोगों से मृत्यु शय्या पर सो गए। अमेरिका में सन् १९६२ में ४१००० लोग धूम्रपान के कारण मर गए। भारत में सिगरेट, बीड़ी, हुक्का या तम्बाकू पीने-खाने वालों की मृत्यु संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। प्रो. हिचकान आदि की सम्मति है कि शराब आदि मादक द्रव्यों की अपेक्षा तम्बाकू से बुद्धि का ह्रास, इन्द्रिय-दौर्बल्य, स्मरण शक्ति की हानि, चित्त की चंचलता तथा मस्तिष्कीय रोग अधिक होते हैं।

बड़े-बड़े कल-कारखानों में तो अग्निकायिक हिंसा से या अग्निकाय के असंयम से प्रदूषण बढ़ता ही है; धूम्रपान से भी प्रदूषण कम नहीं बढ़ता। इसी सिलसिले में भगवान् महावीर ने कहा–"अग्नि के जीवों को पीड़ित करना अपने आपको पीड़ित करना है। जो अग्नि-शस्त्र के स्वरूप तथा उससे होने वाली हानि को जानता है, वह स्वयं को जानता है। जो स्वयं को जानता है, वह अग्निकायिक शस्त्र के स्वरूप को जानता है।"[९] जिस व्यक्ति में अग्नि पर संयम प्रतिफलित नहीं होता है, वह इन विनाशलीलाओं (बम-विस्फोट, हवा में फायर, इंधन आदि से छूटने वाले गैस से दम घुटना आदि हानियों) को जानता हुआ भी अपने पैरों पर स्वयं कुल्हाड़ी मारता है। आधुनिकीकरण की होड़ में बढ़ते हुए धूल कणों तथा रेडियोधर्मी विकिरण के कारण विश्व स्तर पर तापक्रम में भी अन्तर आया है। इससे ध्रुवप्रदेशों की बर्फ पिघलने लगी है। समुद्रीय जल का स्तर ६० फुट ऊँचा हो सकता है। इससे केवल एक देश और एक जातीय प्राणी (मानव) के लिए ही नहीं, विश्व की समूची जीव सृष्टि को खतरा है। जंगल में आग लगाने आदि से वनस्पति आश्रित अनेक प्रकार के जीवों की प्राण हानि हो जाती है, यह भगवान् महावीर ने कहा।

अग्निकाय के इस समारम्भ में गृद्ध (आसक्त) व्यक्ति उन-उन विविध प्रकार से अग्निकायिक शस्त्रों से अग्निकाय का आरम्भ (हिंसा) करते हुए उसके आश्रित अनेक जीवों की हिंसा कर बैठते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। (अग्नि के प्रज्वलित होने पर) पृथ्वी के आश्रित, तृण (घास चारे) के आश्रित, पत्तो के आश्रित जो काष्ठ के आश्रित, गोबर के आश्रित तथा कचरे कूड़े के आश्रित जीव रहते हैं उनकी भी हिंसा हो जाती है। साथ ही, उड़ने वाले कई प्राणी आकर (प्रज्वलित अग्नि में) सहसा गिर जाते हैं और मर जाते हैं।[१०] अतः अग्नि प्रदूषण भी कम हानिकारक नहीं है।

वायु-प्रदूषण और असन्तुलन का कारण : वायुकायिक हिंसा

वायु का प्रदूषण भी वर्तमान युग की गम्भीर समस्या है। गैस के रिसाव से भोपाल में हुए वायु-प्रदूषण से कितने धन-जन की हानि हुई, इससे इस खतरे का अनुमान लगा सकते हैं। कार्बन-डाइ-ऑक्साइड की मात्रा में पिछले १०० वर्षों में १६ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अगर इसी तरह वातावरण में इसकी मात्रा बढ़ती रही तो मनुष्यों और जानवरों के शरीर हेतु आवश्यक प्राण वायु का अनुपात घट जाएगा। इसी घटते अनुपात के कारण महानगरीय इलाकों में रक्त चाप, श्वासरोग, हृदयरोग तथा नेत्ररोग, त्वचारोग, कैंसररोग आदि बढ़ रहे हैं।

नैसर्गिक शुद्ध हवा का प्रदूषण मुख्यतः कारखानों में जलने वाले ईंधन तथा विविध प्रक्रियाओं से हवा में छोड़े जाने वाले पदार्थों के कारण होता है। कारखानों से निकलने वाले धुँए से, वाहनों से निकलने वाले दूषित पदार्थों से तथा कोयला जलाने वाले कारखानों से निकलने वाली गन्धकीय भाप, दावानल तथा अन्य खुदरा ईंधन के जलने से वायु तीव्र गति से प्रदूषित होता जाता है। यह श्वसन-क्रिया द्वारा शरीर में पहुँचकर रक्त की लाल रुधिर कणिकाओं की ऑक्सीजन-परिसंचरण-क्षमता कम कर देती है, जिससे मानव समूह की मृत्यु की भी संभावना है। इसकी १०० पी. पी. एम. सान्द्रता होने पर चक्कर, सिर दर्द एवं घबराहट का अनुभव होता है, तथा करीब १००० पी. पी. एम. पर मृत्यु हो जाती है। ईंधनों के जलने से प्रमुख हानिकारक नाइट्रोजन पर-ऑक्साइड, नाइट्रोजन डाइ-ऑक्साइड तथा नाइट्रोजन मोनो-ऑक्साइड है, जिनसे खाँसी श्वासरोग तथा पेफड़ों के रोग (टी. बी. आदि) उत्पन्न होने का खतरा है।

कलकत्ता के वैज्ञानिक टी. एम. दास ने बताया है कि वायुमण्डलीय (पर्यावरणीय) प्रदूषण मानव के लिए ही नहीं, वनस्पति और जल के लिए भी हानिकारक है। वायु में तैरते कण सूर्य के प्रकाश का अवचूषण करते हैं, जो पौधों के फोटो सिंथेसिस के लिए अत्यन्त हानिकारक हैं। ऐसे प्रदूषित वातावरण से पाँच लाख बच्चे प्रतिवर्ष दमा रोग से पीड़ित हो जाते हैं। फेंफड़ों का कैंसर तथा रक्तवाहिनी नाड़ियों में कड़ापना आना, आँखों की रोशनी धुँधली होना भी वायु-प्रदूषण का परिणाम है। जापान में जिंक के कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों की मृत्यु का कारण प्रदूषित वातावरण में काम करना है। इससे उनके मूत्राशय में काफी प्रमाण में केडमियम इकट्ठा हो जाना बताया गया। इसीलिए भगवान् महावीर ने वायुकाय पर संयम रखने की बात कही तथा वायुकायिक हिंसा के कारण भयंकर हानि बताते हुए कहा–"तं से अहियाए तं से अबोहिए।" अर्थात्–वायुकायिक हिंसा उन मानवों के लिए अहितकर है तथा सम्यक् बोध से रहित कर देने वाली बनती है।

जल-प्रदूषण भी विनाश और महा हानि का कारण

पानी हमारी दुनिया के जीवन-धारण का एक मुख्य स्रोत है। परन्तु आज उसमें भी भयंकर प्रदूषण पैदा हो रहा है। जैनधर्म की दृष्टि से पानी भी एक सजीव तत्व है। उसमें अप्काय के स्थावर जीव पाये जाते हैं। अप्काय के आश्रित वनस्पतिकाय के तथा द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय प्राणी, यहाँ तक कि मछली आदि जल जन्तु भी पलते हैं। मनुष्य का मल-मूत्र एवं गंदगी, कचरा आदि पानी के साथ मिलता है, और वह खुला रहता है, उसमें अनेक कीटाणु मक्खी, मच्छर, बिच्छू आदि नाना प्रकार के जीव पैदा हो जाते हैं, मरते हैं, तथा जनता के स्वास्थ्य को भयंकर हानि पहुँचाते हैं। अनेक कल-कारखानों में पानी का भारी मात्रा में उपयोग होता है, जब वह पानी रासायनिक प्रक्रियाओं से गुजर कर आता है तो इतना प्रदूषित हो जाता है कि मनुष्यों के ही क्या, पशुओं, पक्षियों तथा जल-जन्तुओं तक के लिए हानिकारक और अपेय हो जाता है। संसद सदस्य मुरली मनोहर जोशी के अनुसार दिल्ली के पानी में इतना अधिक अमोनिया हो गया कि वह पानी पेशाव से भी खराब हो गया है। गोआ के एक खाद के कारखाने को इसी लिए बंद करना पड़ा। वर्तमान सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ कि दिल्ली में प्रतिवर्ष लगभग दो लाख व्यक्ति जल-प्रदूषण से मर रहे हैं। स्विट्जरलैण्ड के जिनेह्वासागर का पानी एक समय अतिस्वच्छ और शीतल था। आज यदि कोई उस पानी का सेवन कर ले तो वह अनेक दुःसाध्य रोगों से आक्रान्त हो जाता है। जर्मनी की राइन नदी में खतरे के कारण प्रदूषित जल से करोड़ों मछलियाँ मर गईं। ये यंत्रीकरण जल और वायु के प्रदूषण के मुख्य अंग हैं। भारत की ८० प्रतिशत आबादी जो देश की १४ बड़ी नदियों के किनारे पर बसी हुई है, पानी के प्रदूषण से प्रभावित है। इसीलिए भगवान् महावीर ने कहा था–जो यह अनेक प्रकार के शस्त्रों (प्रदूषणवर्द्धक) से जल कर्म समारम्भ के लिए जलीय शस्त्रों का समारम्भ (हिंसा) करते हुए, जल के ही नहीं, तदाश्रित अनेक प्राणियों की हिंसा करते हैं।[११] जलीय हिंसा अनेक लोगों के स्वास्थ्य धन-जन के विनाश का कारण है।

बम्बई जैसे शहरों में जल-प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि वहाँ के निकटवर्ती समुद्र में स्नान करना खतरे से खाली नहीं है। प्रदूषण की यदि यही गति रही तो एक दिन नदी तालाब समुद्र आदि सभी जलाशयों में प्रदूषण अत्यधिक बढ़ सकता है।

ध्वनि प्रदूषण और वायुकायिक हिंसा

ध्वनि के अत्यधिक प्रयोग, तीव्र ध्वनि के संक्रमण एवं अत्यधिक बोलते से मनुष्य की जीवनी शक्तियों का तो ह्रास होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही है, वायु प्रदूषण भी कम नहीं होता। स्फोटक ध्वनि से बड़े-बड़े पत्थरों को तोड़ा जा सकता है तो मनुष्यों और पशुओं के कान के पर्दे न फटें, यह असंभव है। यातायात की खड़खड़ाहट, विमानों का कर्णभेदी स्वर, रेडियो आदि का कर्ण कटु स्वर, कल-कारखानों और मशीनों की सतत धड़धड़ाहट अत्यधिक कोलाहल, विभिन्न वस्तुओं के घर्षण से होने वाली आवाज तथा कम्पन आदि कितने ही प्रकार की ध्वनियाँ हमारे कानों पर आक्रमण करती हैं। अमेरिका के वातावरण-संरक्षक विभाग ने अपनी रिपोर्ट में कहा है–'अकेले अमेरिका में तीव्र आवाज से ४ करोड़ लोगों के आरोग्य को धक्का पहुँचा है। कार्यालयों या घरों में शान्त जीवन बिताने वाले अन्य ४ करोड़ लोगों की कार्यक्षमता में कमी आई है। लगभग २५ लाख लोग कर्ण यंत्र के प्रयोग के बिना कानों से सुनने में असमर्थ हो गए हैं।

असह्य ध्वनि का प्रभाव केवल कानों पर ही नहीं, सारे शरीर पर पड़ता है। श्वसन-प्रणाली, पाचन-प्रणाली, प्रजनन-क्षमता तथा मज्जा-संस्थान पर भी इसका गहरा असर पड़ता है। सिर दर्द, आँखों में घाव, स्नायु दौर्बल्य आदि बीमारियाँ भी इसी की देन हैं। श्रवण शक्ति तो मन्द पड़ती ही है। अधिकतर झगड़े, दंगे-फिसाद का मूल कारण तीव्र एवं कर्कश ध्वनि है। इसीलिए भगवान् महावीर ने 'वइसंजमे' (वचनसंयम) वचनगुप्ति, विकथा-त्याग, भाषासमिति (भाषा की सम्यक् प्रवृत्ति) आदि पर अत्यधिक जोर दिया है। आचारांगसूत्र में स्पष्ट कहा है–जं सम्मं ति पासहा तं मोणं ति पासहा।'[१२] जो सत्य को जानता है, वही मौन का महत्त्व जानता है। भगवान् महावीर ने इसी दृष्टि से वायुकायिक हिंसा से बचने का उपदेश दिया था।

वनस्पतिजन्य हिंसा और प्रदूषण

वनस्पतिकाय की हिंसा के नानाविध दुष्परिणाम अतीव स्पष्ट है। एक ओर उससे प्राणवायु (ऑक्सीजन) का नाश हो रहा है, दूसरी ओर भूक्षरण तथा भूस्खलन को बढ़ावा मिल रहा है। पेड़-पौधे आदि सब वनस्पतिजन्य हैं। इनमें जीवन का अस्तित्व जगदीशचन्द्र बोस आदि जैव वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है। इनकों हर्ष-शोक या सुख-दुःख का संवेदन होता है। इसीलिए भगवान् महावीर ने वनस्पतिकाय-संयम बताया है। वृक्षों को काटकर उनसे आजीविका करने (वणकम्मे) तथा वृक्षों से लकड़ियाँ काटकर कोयले बनाने के धंधे (इंगालकामे) एवं बड़े-बड़े वृक्षों के लट्ठों को काट-छील कर विविध गाड़ियाँ बनाने और बेचने के धंधे (साड़ी कम्मे) की सद्गृहस्थ के लिए सख्त मनाही ही की है। वनों प्राकृतिक संपदा को नष्ट करना भयंकर अपराध है उससे वृष्टि तो कम होती ही है, मानव एवं पशुओं के जीवन भी प्रकृति से बहुत दूर हो जाते हैं, कृत्रिम बन जाते हैं। पर्यावरण-सन्तुलन को बनाये रखने में वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं का बहुत बड़ा हाथ है। परन्तु मनुष्य आज रासायनिक खाद एवं जहरीली दवाइयाँ डालकर जमीन को अधिक उर्वरा बनाने का स्वप्न देखता है, मगर इससे बहुत से कीड़े मर जाते हैं, तथा जो अन्नादि पैदा होता है, वह भी कभी-कभी विषाक्त एवं सत्त्वहीन हो जाता है। इसीलिए भगवान् महावीर ने कहा–"जो लोग नाना प्रकार के शस्त्रों (खाद, विषाक्त रसायन, कीटनाशक दवा आदि) से वनस्पतिकाय के जीवों का समारम्भ करते हैं, वे उसके आश्रित नाना प्रकार के जीवों का समारम्भ करते हैं।[१३] अतः वनस्पति से होने वाले प्रदूषण एवं पर्यावरण-असंतुलन से बचने का प्रयत्न करना चाहिए। ●●

सन्दर्भ स्थल

१. जीवकाय संजमे अजीवकाय संजमे –*समवायांग समवाय २*
२. भगवद्गीता ३/११
३. 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्।' –*तत्त्वार्थ सूत्र ५/२१*
४. स्थानांग सूत्र, स्थान. ५/सू. ४४७
५. पुढवीकायसंजमे अपकायसंजमे, तेउकायसंजमे, वाउकायसंजमे, वणस्सइ-काय संजमे, बेइंदिय-संजमे, तेइंदिय-संजमे, चउरिंदिय-संजमे, पंचिदिय-संजमे अजीवकाय-संजमे, पेहासंजमे, उवेहा-संजमे, अवहट्टु संजमे, पमज्जणासंजमे, मणसंजमे, वइ संजमे, काय संजमे। –*समवायांग सूत्र १७ वां समवाय*
६. देखें आवश्यकसूत्र में १५ कर्मादानों का पाठ
७. "तं परिण्णाय मेहावी नेव सयं पुढवि-सत्थं समारंभेज्जा, नेवन्नेहिं पुढवि-सत्थं समारंभोवेज्जा, नेवण्णे पुढविसत्थं समारभंते समणुजाणेज्जा।" –*आचारांग १/१/३४*
८. "जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढवि-कम्म-समारंभेणं पुढवि-सत्थं समारंभेमाणे अण्णेवऽणेगरूवे पाणे विहिंसई।" –*आचारांगसूत्र १/१/२७*
९. "जे लोगं अब्भाइक्खति, से अत्ताणं अब्भाइक्खति।" –*आचारांग १/१/४/३२*
१०. "इच्चत्थं गढिए लोए, जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं अगणिकाय-समारंभेणं अगणि-सत्थं समारंभेमाणे अण्णेवऽणेगरूवे पाणे विहिंसति।"
"संति पाणा पुढवि-णिस्सिता तण-णिस्सिता, पत्त-णिस्सिता कट्ठणिस्सिता गोमय-णिस्सिता कयवर-णिस्सिता, सांते संपातिमा पाणा आहच्च संपयंति च। –*आचारांग १/१/४/३६-३७*
११. "जमिणं विरूवरूवेहिं सत्थेहिं उदय-कम्म-समारंभेणं उदयसत्थं समारंभमाणे अण्णेऽणेगरूवं पाणेविहिंसति।... संतिपाणाउदयणिस्सिया जीवा अणेगा।" –*आचारांग १/१/२/२५*
१२. वही, १/१/४/५१
१३. आचारांगसूत्र १/१/५/४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्यावरण-प्रदूषण : बाह्य और आन्तरिक

–श्री विनोद मुनिजी म. (अहमदनगर)

भौतिक विज्ञान की करामात

वर्तमान युग विज्ञान युग कहलाता है। यह विकास और प्रगति का युग माना जाता है। धरती पर बैलगाड़ी और घोड़े की सवारी करने वाला मानव आज गगनगामी विमानों में पक्षियों की भाँति उड़ान भरने लगा है। जब हम सुदूर अतीत में झाँकते हैं, तो हमें ऐसा प्रतीत होता है कि वह युग कितना पिछड़ा हुआ और अविकसित था। एक दृष्टि से सोचें तो वह आदिम युग जंगली युग था, जिसमें विकास और प्रगति का नामोनिशान नहीं था। आज भौतिक विज्ञान ने प्रचुर अकल्प सुख-साधन-सामग्री का अम्बार लगा दिया है। मनुष्य स्वप्न में भी जिन चीजों की कल्पना नहीं कर पाया था, उन वस्तुओं का आश्चर्यजनक रूप से निर्माण करके विज्ञान ने मानव को चमत्कृत कर दिया है। साधारण जनता की बुद्धि तो वहाँ तक पहुँच भी नहीं पाई है। उन्हें तो यह सब आश्चर्य ही लग रहा है। यद्यपि जादूगर जादू के करिश्मे दिखाकर मानव-मन को प्रभावित कर देते हैं, किन्तु वे करिश्मे सुदीर्घकाल स्थायी नहीं होते। उनमें या तो हाथ की सफाई होती है, या हिप्नोटिज्म या मैस्मेरिज्म द्वारा दर्शकों की आँखों को या मन को मूर्च्छित कर दिया जाता है। ये सारे चामत्कारिक प्रयोग अल्पकाल के लिये ही मानवमन को गुदगुदाते और प्रमुदित करते हैं। इसके विपरीत भौतिक विज्ञान के एक से एक बढ़कर चमत्कार मानव मन पर चिरस्थायी प्रभाव डालते हैं, उसे स्वयं उनका प्रत्यक्ष अनुभव भी करा देते हैं।

भौतिक विज्ञान का आध्यात्मिक क्षेत्र में पिछड़ापन

किन्तु हम देखते हैं कि यह विज्ञान भौतिक क्षेत्र में जितना द्रुत गति से आगे बढ़ा और अहर्निश बढ़ता ही जा रहा है, उसकी उतनी द्रुतगामिता आध्यात्मिक क्षेत्र में नहीं आ पाई है। जो कुछ गति हुई है, वह भी बहुत ही नगण्य है, क्योंकि भौतिक विज्ञान का प्रमुख उद्देश्य और कार्यक्षेत्र भौतिक क्षेत्र ही रहा है। इसलिए आध्यात्मिक दौड़ में वह पिछड़ता रहा है। भौतिक विज्ञान के आध्यात्मिक क्षेत्र में पिछड़ेपन का अनिष्ट फल वर्तमान प्राणिजगत् को ही भोगना पड़ रहा है।

विज्ञान और अध्यात्म दोनों पूरक व सहयोगी हैं

यह तो दिन के उजाले की तरह स्पष्ट है कि विज्ञान और अध्यात्म दोनों प्रतिस्पर्धी या विरोधी नहीं हैं, बल्कि ये दोनों एक-दूसरे के पूरक, सहयोगी और जीवन विकास के अंग हैं। जीवन-निर्माण में दोनों का अपना-अपना महत्वपूर्ण स्थान है। इन दोनों में से किसी एक को छोड़कर दूसरा अकेला चले तो मानवजगत् पर जानबूझ कर आफत लाने जैसी बात होगी। जैसे मानव शरीर में मस्तिष्क और हाथ दोनों का विकसित और सुदृढ़ होना अनिवार्य है। एक अंग विकसित और पुष्ट हो और दूसरा अंग अविकसित और दुर्बल हो तो कार्य करने की क्षमता शरीर में नहीं आ सकती। मनुष्य के दोनों पैर बराबर और मजबूत हों, तभी वह आराम से गति कर पाता है; अन्यथा उनसे चलने-फिरने में बहुत दिक्कत होती है।

वर्तमान युग का मानव अशान्त क्यों?

वर्तमान का मानव इसीलिये अशान्त, त्रस्त, तनावग्रस्त एवं भयाक्रान्त बना हुआ है कि भौतिक विज्ञान आध्यात्मिकता की उपेक्षा करके आगे बढ़ा है। इसीलिए मानवमन को कदम-कदम पर शंका-कुशंकाएँ घेरे रहती हैं। वर्तमान युग का मानव शान्ति के बदले अशान्ति तथा चैन के बदले बेचैनी से जी रहा है। आज आदमी में स्वार्थ, ईर्ष्या, भय, अविश्वास एवं अहंकार की वृत्तियाँ फलती-फूलती जा रही हैं। एक समाज दूसरे समाज को और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को गिराने में तत्पर है। एक-दूसरे के विकास को देखना भी असह्य हो रहा है। धर्म-परम्पराओं और सम्प्रदायों में भी इसी तरह की संकीर्ण मनोवृत्ति का बोलबाला बढ़ता जा रहा है।

आध्यात्मिकता के अभाव में समस्याएँ नहीं सुलझा पाता

वर्तमान में, भौतिक विज्ञान की अन्धी दौड़ में मानव के पैर न तो धरती पर टिक पा रहे हैं और न ही आकाश पर। उसके सामने आज जीवन की अनेक समस्याएँ मुँह बाये खड़ी हैं; जिन्हें सुलझाने में उसका दिमाग कुण्ठित हो जाता है। वह जैसे-जैसे उन समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करता है, वैसे-वैसे वे उलझती जाती हैं। आध्यात्मिकता के अभाव में, या यों कहिये आत्मवत् सर्वभूतेषु मंत्र के अभाव में भौतिक विज्ञान के घोड़े पर चढ़ा हुआ मानव किसी भी समस्या को ठीक तरह से हल नहीं कर पाता है।

बाह्य और आन्तरिक समस्या है–पर्यावरण-प्रदूषण की। आज सबसे बड़ी और अहम समस्या है पर्यावरण के प्रदूषण की। बाह्य पर्यावरण के प्रदूषण से भी बढ़कर आन्तरिक पर्यावरण का प्रदूषण है, जिसे पाश्चात्य देशों के लोग तो कथमपि हल नहीं कर पाते। पाश्चात्य देश भारतवर्ष को अध्यात्म-सम्पन्न मानकर इससे इस समस्या को हल करने की अपेक्षा रखते थे, परन्तु अफसोस है कि भारतवर्ष आज स्वयं ही बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के पर्यावरण-प्रदूषणों से ग्रस्त है। पर्यावरण-प्रदूषण का प्रश्न आज केवल एक राष्ट्र का नहीं रहा, आज वह सारे जगत् का प्रश्न बन गया है।

जो भारतवासी लोग गंगा, यमुना, सरस्वती, गोमती, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी आदि नदियों को जलीय पर्यावरण प्रदूषण से रहित पवित्र, मैया तीर्थरूप एवं लोकमाता मानते थे, उन्होंने या भारत के नागरिकों ने इस तथ्य को नजरअंदाज करके धड़ल्ले से गंगा आदि पवित्र लोकमाता रूप नदियों के किनारे बड़े-बड़े कल-कारखाने लगाकर उसमें दूषित एवं गंदा, रोगवर्द्धक जल डालकर अमृत को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विष मिश्रित-सा बना देने का कार्य किया है, कर रहे हैं। उन महानदियों का पानी इतना दूषित हो चुका है कि वह पीने योग्य नहीं रहा। पर इस ओर उन यंत्र जीवी लोगों का ध्यान बिल्कुल नहीं रहा. अगर उन भौतिक विज्ञान के अनुचरों में अध्यात्म का पुट होता तो वे प्राणिमात्र के साथ मैत्रीभाव, बन्धुभाव और आत्मौपम्य भाव से सोचकर इस पर्यावरण प्रदूषण से बचते। जलीय प्रदूषण के कारण कितनी मछलियाँ और जल जन्तु मर जाते हैं। महासंहारक अणु-बमों और उपग्रहों आदि समुद्रजल में जब परीक्षण किया जाता है, तब पर्यावरण तो प्रदूषित होता ही है, प्राणिजीवन के नाश के साथ-साथ मौसम पर भी उसका जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है। इस कारण कहीं अतिवृष्टि, कहीं अनावृष्टि, कहीं सूखा, कहीं भूकम्प और बाढ़, तूफान आदि प्राकृतिक प्रकोप होते रहते हैं।

देवता मानकर भी प्राकृतिक पदार्थों का पर्यावरण प्रदूषित करते हैं

अति प्राचीन काल के वैदिक धर्म के मूर्धन्य ग्रन्थों–वेदों, ब्राह्मणों, पुराणों और उपनिषदों में जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी, वनस्पति, आकाश आदि सभी को क्रमशः वरुण, वैश्वानर, मरुत, भूमि, वनस्पति, वियत् आदि देव कहकर उनकी दिव्यशक्तियों से यत्र-तत्र प्रार्थना की गई है। पृथ्वी को "माता भूमिः पुत्रोऽह पृथिव्याः" (भूमि माता है, मैं भूमि का पुत्र हूँ) कहा है। आज वे ही आर्यों के वंशज पृथ्वी पर गंदगी, कूड़ा-कर्कट, मल-मूत्र तथा कल-कारखानों का गंदा दूषित तथा रासायनिक पदार्थ मिला हुआ पानी आदि डालते हैं, अथवा पृथ्वी का पेट फाड़ने हेतु बड़े-बड़े विस्फोट करते हैं, डायनामाइट लगाते हैं, ये सब पृथ्वी सम्बन्धित पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं, भूमिमाता को उसके पुत्र (मानव) प्रदूषित करें, यह अशोभनीय है। अग्नि का पर्यावरण भी कम प्रदूषित नहीं है। कई लोग कचरे, वनस्पति, जंगल आदि में आग लगाकर उनके आश्रित जीवों का संहार कर देते हैं, साथ ही सहारा या जैसलमेर आदि रेगिस्तानों में अणु-अस्त्रों या उपग्रहों का परीक्षण करते हैं, जिससे सारा पर्यावरण प्रदूषित हो जाता है। कई रोग फैल जाते हैं। बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, चुरट आदि धूम्रपान करके वायु-सम्बन्धित प्रदूषण बढ़ाते हैं। वनस्पति का प्रदूषण भी कम नहीं है। जगह-जगह वन काटकर, वनस्पति को जलाकर अथवा ऐसी रासायनिक दवाइयाँ डालकर केला, आम, पपीता आदि फल पकाते हैं जिससे उसमें से बहुत-सा विटामिन निकल जाता है। वनस्पतियों से जो ऐलोपैथिक दवाइयाँ बनाई जाती हैं, वे भी रुग्ण व्यक्ति के द्वारा सेवन करने के बाद साइड एफेक्ट करती हैं, रिएक्सन भी करती हैं। यब सब वनस्पति प्रदूषण के कारण होता है। वायुप्रदूषण भी बड़े-बड़े शहरों के कल-कारखानों से निकलने वाले धुँए से फैलता है। पेड़ों की कटाई के कारण वन और वन्य जीव लुप्त होते जा रहे हैं। झीलें सूखती जा रही हैं। नगरों के पास नदियों का पानी पीने योग्य नहीं है और न ही नगरों का पानी पीने योग्य रहा है। बोकारो, राउरकेला, रांची आदि नगरों में बड़ी-बड़ी धमण भट्टियों के कारण उनसे उठने वाला धुँआ और आग की लपटें वहाँ के सारे आकाश और वायुमण्डल दोनों को दूषित और आच्छादित कर देते हैं। इस कारण वहाँ के निवासियों और कारखानों के कर्मचारियों की जिंदगी उस प्रदूषण से रोगग्रस्त और अल्पायुषी हो जाती है। कुछ वर्षों पहले भोपाल में गैस रिसाव काण्ड तथा बम्बई में हुए बमकाण्ड आदि ने समस्त वायुमण्डल को प्रदूषित करके अनेक लोगों के प्राणहरण कर लिये थे, जो व्यक्ति घायल हुए, वे भी अपंग, रोगग्रस्त या सत्त्वहीन रह गए। कभी-कभी कहीं अग्निकाण्ड हो जाता है तो वह भी वायु के पर्यावरण को प्रदूषित कर देता है।

पर्यावरण दूषित होने से मानव स्वास्थ्य खतरे में

पर्यावरण और मानव-स्वास्थ्य का गहरा सम्बन्ध है। विकसित राष्ट्र जो सुचारु स्वास्थ्य के प्रति सदैव जागृत हैं, वर्तमान भौतिक विकास के कारण होने वाले पृथ्वी, जल, वनस्पति एवं वायु में हुए पर्यावरण प्रदूषण के खतरों से बहुत व्यथित हैं। इस प्रदूषण से पानी दूषित, पृथ्वी दूषित और वायु दूषित हो रहा है, इतना ही नहीं, मानव का तन और मन भी दूषित हो रहा है। आज पर्यावरण और जन-स्वास्थ्य दोनों ही बाह्य प्रदूषण द्वारा नष्ट किये जा रहे हैं। जल, मिट्टी और वायु से निकलने वाले जहरीले प्रदूषणकारी तत्त्व श्वास लेते समय, खाते-पीते समय मानव शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। यदि प्रदूषण का स्तर काफी ऊँचा होता है या लम्बे समय तक कम मात्रा में भी प्रदूषण एकत्रित होते रहते हैं तो ऐसे प्रदूषणों से कैंसर, गैस, दमा, क्षय, रक्तचाप आदि जैसे जान लेवा रोग भी हो सकते हैं। नदियों का जल विविध उद्योगों से निकले गंदे जल के मिलने से गंदा हो जाता है, फिल्टर करने के बावजूद भी उस पानी को पीने से अनेक उदररोग, गैसट्रबल एवं हृदय रोग तक हो जाते हैं। मानव-समाज का हर व्यक्ति एक-दूसरे से जुड़ा होने के कारण किसी न किसी रूप में एक-दूसरे के काम आता है, वैसे ही प्रकृति रूप समाज का भी हर तत्त्व एक दूसरे से जुड़ा है। अतः प्रकृति के जल, वायु, भूमि आदि किसी भी तत्त्व में असंतुलन होगा, इनका सीमा से अधिक उपभोग होगा, इनसे छेड़छाड़ होगी तो प्रकृति का ढाँचा टूटे बिना न रहेगा और उसके दुष्परिणाम मानव जाति को भोगने पड़ेंगे।

बाह्य प्रदूषण और उससे होने वाली भयंकर हानि की आशंका

बाह्य प्रदूषण और क्या है? मनुष्य द्वारा होने वाले विविध कार्यकलापों के कारण पर्यावरण में छोड़े गए गंदे, सड़े-गले, दुर्गन्धयुक्त रोगोत्पादक अवशिष्ट पदार्थ। इसी प्रदूषण के कारण मानव जाति आज प्रकृतिमाता के प्रति घोर अपराधिनी बन गई है। यही कारण है कि उर्वरा भूमि के बंजर होने की शंकाएँ बढ़ रही हैं। पंजाब के एक प्रमुख कृषि वैज्ञानिक ने कुछ ही महीनों पहले कहा था–"पंजाब में जिस तरह की फसलें ली जा रही है, एवं धरती के नीचे के पानी का जिस प्रकार से उपयोग किया जा रहा है, उसे देखते हुए यह संभावना है कि आगामी दशक में पंजाब जैसलमेर जैसा बन सकता है। पंजाब की जमीन पूर्णतया ऊसर हो सकती है, पानी भी पूरी तरह से सूख सकता है। शहरों की प्रदूषित वायु और जल जीवन रक्षण के बजाय जीवन भक्षण करने वाले बन सकते हैं।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

समग्र मानव जाति को पर्यावरण सुरक्षा के लिए अपनी जीवन शैली बदलनी होगी

मानव में आज मानवता और अन्य प्राणियों के प्रति हमदर्दी लुप्त होती जा रही है। जैनदर्शन के दो मुख्य तत्त्व–अहिंसा और अपरिग्रह ही पर्यावरण के वाह्य प्रदूषणों को रोकने में सक्षम हैं। यदि हमें मानवजगत् को विनाश से बचाना है तो जीवनयापन की अपनी शैली और गलत पद्धति को बदलना होगा। हमें 'जीओ और जीने दो' के सिद्धान्त पर अपनी जीवन शैली चलानी होगी। अपना जीवन सादा, संयमी, अल्पतम आवश्यकताओं वाला बनाना होगा; अन्यथा, इन सार्वभौमिक मूल्यों की उपेक्षा करने से और इन सार्वजनिक जीवन सिद्धान्तों का उल्लंघन करने से विश्व में पर्यावरण-प्रदूषण बाह्यरूप से अधिकाधिक बढ़ता जाएगा। अगर हम अपने इस धर्म और कर्तव्य से मुँह मोड़ेंगे तो अपने हाथों से अपने और समाज के जीवन को नरक बना डालेंगे। यह कार्य अकर्मण्य बन कर सोते रहने से नहीं होगा। इस कार्य को करना सरकार के या समूह के बस की बात नहीं है, व्यक्ति को इसके लिए स्वयं ही कमर कसनी होगी। जल, वायु, भूमि, वनस्पति, आकाश आदि मानव के अभिन्न मित्रों की हमें सदैव रक्षा करनी होगी। तभी पर्यावरण की रक्षा होगी।

बाह्य प्रदूषणों से जन-जीवन खतरे में

हम देखते हैं, आज पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति से सम्बन्धित बाह्य प्रदूषणों से सभी राष्ट्रों का जनजीवन खतरे में पड़ गया है। जैनधर्म-दर्शन तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में जीव मानता है। अतः इनके पर्यावरणों के बाह्य प्रदूषणों से उन-उन जीवों की हानि तो होती ही है, साथ ही उनके आश्रित रहे हुए अनेक त्रस जीवों की हानि का तो कोई पार ही नहीं है। बाह्य प्रदूषणों की इस विकट समस्या के कारण भारत ही नहीं, विश्व के सभी देश चिन्तित और व्यथित हैं। विश्व की बड़ी-बड़ी शक्तियाँ पर्यावरण शुद्धि के लिए करोड़ों-अरबो रुपये व्यय कर रही हैं, इसके प्रचार-प्रसार के लिये जगह-जगह विचारगोष्ठियों और सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है। फिर भी जगत् के जाने-माने देश वहीं के वही हैं, उसी प्रदूषण में जी रहे हैं। बाह्य प्रदूषण से होने वाली शारीरिक व्याधियों से आम जनता आज बहुत ही आक्रान्त है। बाह्य रोगों की चिकित्सा और रोग निवृत्ति के लिये नई-नई खर्चीली पद्धतियाँ और नये-नये यंत्रों की आयोजना अपनाई जा रही है, फिर भी नैसर्गिक आरोग्य प्राप्त नहीं होता।

आन्तरिक प्रदूषण बाह्य प्रदूषण से कई गुना भयंकर

इसका प्रमुख कारण है–आन्तरिक प्रदूषण, जिसकी ओर चिकित्सकों और वैज्ञानिकों का ध्यान बहुत ही कम है। आन्तरिक प्रदुषण से आन्तरिक (मानसिक-बौद्धिक) रोगों की चिकित्सा की ओर बड़े-बड़े राष्ट्रों का भी ध्यान कम ही है। एक तरह से आधि और उपाधि इन दोनों आन्तरिक प्रदूषणों से जनित समस्याओं को सुलझाने में प्रायः सभी देशों के नागरिक अक्षम हो रहे हैं। हिमालय जितनी बड़ी भूल करते जा रहे हैं, वे लोग इसी कारण बाहर से सम्पन्न दिखाई देने वाला देश भीतर से खोखला है, त्रस्त है, संकट-ग्रस्त है, प्राकृतिक प्रकोपों के कारण भयाक्रान्त है। मानव बुद्धि की यह कितनी घोर विडम्बना है। अगर यही क्रम लगातार चलता रहा तो मानव जाति एक दिन विनाश के कगार पर पहुँच सकती है। फिर आँखें मल-मल कर रोने-धोने के सिवाय कोई चारा न रहेगा।

इसीलिए महर्षियों ने मानवपुत्रों को निर्देश करते हुए कहा–

'उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्यवरान् निबोधत'

'हे आर्यपुत्रो! तुम उठो, जागो और वरिष्ठ मानवों के पास पहुँचकर बोध प्राप्त करो।'

इसी दृष्टि से भगवान् महावीर ने कहा–'उट्ठिए, नो पमायए' 'हे देवानुप्रियो! तुम स्वयं उत्थान करो (उठो) प्रमाद मत करो।'

आन्तरिक प्रदूषण मिटाना वैज्ञानिकों के बस की बात नहीं

पर्यावरण के बाह्य प्रदूषण कदाचित् विविध वैज्ञानिक उपकरणों और साधनों से मिटाये भी जा सकें, किन्तु आन्तरिक प्रदूषणों को मिटाना वैज्ञानिकों के बस की बात नहीं है। आन्तरिक प्रदूषण व्यक्ति, परिवार, राष्ट्र, धर्म-सम्प्रदाय, जाति, कौम आदि समाज के सभी घटकों में किसी न किसी रूप में व्याप्त है। आन्तरिक प्रदूषण मिटाये बिना केवल बाह्य प्रदूषण मिटाने भर से मानव जाति की सुख-शान्ति, समाधि और आध्यात्मिक समृद्धि की समस्या हल नहीं हो सकती।

आन्तरिक प्रदूषणों में सर्वाधिक भयंकर : अहंता-ममता

आन्तरिक प्रदूषणों में सबसे भयंकर प्रदूषण है–अहंकार और ममकार। अहं और मम इन दो शब्दों ने जगत् को अन्धा कर रखा है। अहंता-ममता के कारण ही राग, द्वेष, मोह, ममत्व, ईर्ष्या, घृणा, वैर-विरोध, भेदभाव, फूट, विषमता, क्रोध, मान, माया, लोभ, मद-मत्सर, स्वार्थान्धता आदि एक-एक से बढ़कर आन्तरिक प्रदूषण फैलाते हैं। कहीं धन को लेकर अहंकार-ममकार है, तो कहीं जाति, भाषा, धर्म-सम्प्रदाय, परिवार या अपने स्त्री-पुत्र को लेकर अहंकार, ममकार है, स्वत्व मोह है, स्वार्थान्धता है, कहीं बलवान् और निर्बल, शिक्षित और अशिक्षित, निर्धन और धनवान्, सवर्ण और असवर्ण, काले-गोरे, आदि द्वन्द्वों को लेकर विषमता है। एक ओर हीनता की ग्रन्थि है तो दूसरो ओर उच्चता की ग्रन्थि है। लाघवग्रन्थि और गौरवग्रन्थि को लेकर आये दिन कलह, सिर फुटोव्वल, दंगा-फिसाद आदि से आन्तरिक और बाह्य पर्यावरण प्रदूषित होते रहते हैं। मनुष्य अपनी मानवता को भूलकर दानवता और पाशविकता पर उतर आता है।

आन्तरिक प्रदूषण हृदय और मस्तिष्क पर कब्जा कर लेता है

किसी के पैर में कांटा चुभ जाए अथवा आँख में रजकण पड़ जाए तो जब तक निकाला न जाए, तब तक चैन नहीं पड़ता; इसी प्रकार बाह्य प्रदूषण न होने पर भी इनमें से कोई भी आन्तरिक प्रदूषण हो तो उसको चैन नहीं पड़ता, मन में अशान्ति, घुटन,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तनाव, अनिद्रा, चिन्ता, बेचैनी आदि बढ़ते रहते हैं, कभी-कभी तो आन्तरिक प्रदूषण से हार्टफेल तक हो जाता है। बाहर से शरीर सुडौल, स्वस्थ और गौरवर्ण, मोटा-ताजा दिखाई देने पर भी आन्तरिक प्रदूषण के कारण अंदर-अंदर खोखला, क्षीण और दुर्बल होता जाता है। उस आन्तरिक प्रदूषण का बहुत ही जबर्दस्त प्रभाव हृदय और मस्तिष्क पर पड़ता है। इतना होने पर भी किसी को अपने धन-सम्पत्ति और वैभव का गर्व है, किसी को विविध भाषाओं का या विभिन्न भौतिक विद्याओं का, किसी को जप-तप का और किसी को शास्त्रज्ञान का, किसी को बुद्धि और शक्ति का, किसी को अपनी जाति, कुलीनता और सत्ता का अहंकार है। इस कारण वे आन्तरिक प्रदूषण से ग्रस्त होकर दूसरों का शोषण करने, उनकी अज्ञानता का लाभ उठाने, उन्हें नीचा दिखाने को तत्पर रहते हैं।

आन्तरिक पर्यावरण के प्रदूषित होने का एक प्रमुख कारण : वृत्तियों की अशुद्धता

आन्तरिक पर्यावरण प्रदूषित होने का एक प्रमुख कारण है, वृत्तियों का अशुद्ध होना। आज मनुष्य की वृत्तियाँ बहुत ही अशुद्ध हैं, इस कारण उसकी प्रवृत्तियाँ भी दोषयुक्त हो रही हैं। वृत्ति यदि विकृत है, दूषित है, अहंकार, काम, क्रोध, लोभ आदि से प्रेरित है तो उसकी प्रवृत्ति भी विकृत, दूषित एवं अहंकारादि प्रेरित समझनी चाहिए। बाह्य प्रवृत्ति से शुद्ध-अशुद्ध वृत्ति का अनुमान लगाना ठीक नहीं है। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि की बाह्य प्रवृत्ति तो शुद्ध-सी दिखाई देती थी, परन्तु वृत्ति अशुद्ध और विकृत थी। तन्दुल मच्छ की बाह्य प्रवृत्ति तो अहिंसक-सी दिखाई देती थी, किन्तु उसकी वृत्ति सप्तम नरक में पहुँचाने वाली हिंसापरायण बन गई थी। विकृत वृत्ति आन्तरिक प्रदूषण को उत्तेजित करती है। आज प्रत्येक धर्म-सम्प्रदाय में, ग्राम-नगर, प्रान्त में एक-दूसरे से आगे बढ़ने की और दूसरे राष्ट्रों की उन्नति, विकास और समृद्धि से ईर्ष्या, द्वेष करता है, उन अविकसित देशों में गृह कलह को बढ़ावा देकर उनकी शक्ति कमजोर करने में लगे हैं। यह कुवृत्तियों के कारण हुए आन्तरिक प्रदूषण का नमूना है। अमेरिका में भौतिक वैभव, सुख-साधनों का प्राचुर्य एवं धन के अम्बार लगे हैं, फिर भी आसुरी वृत्ति के कारण आन्तरिक प्रदूषण बढ़ जाने से अमेरिकावासी प्रायः तनाव, मानसिक रोग, ईर्ष्या, अहंकार, क्रोध, द्वेष आदि मानसिक व्याधियों से त्रस्त हैं। निष्कर्ष यह है कि अगर प्रवृत्तियों को सुधारना है तो काम, क्रोध आदि वृत्तियों से होने वाले आन्तरिक प्रदूषण का सुधारना अनिवार्य है। वृत्तियों में अनुशासनहीनता, स्वच्छन्दता, कामना-नामना एवं प्रसिद्धि की लालसा, स्वत्व-मोहान्धता आदि से आन्तरिक पर्यावरण प्रदूषित है तो प्रवृत्तियां नहीं सुधर सकतीं।

आन्तरिक पर्यावरण-प्रदूषण का मूल स्रोत : राग द्वेषात्मक वृत्तियाँ

वस्तुतः राग-द्वेषात्मक वृत्तियाँ ही विभिन्न आन्तरिक पर्यावरणों के प्रदूषित होने की मूल स्रोत हैं। ये ही दो प्रमुख वृत्तियाँ काम, (स्त्री-पुं-नपुंसकदेवत्रय) क्रोध, रोष, आवेश, कोप, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, मोह, परपरिवाद इत्यादि अनेक वृत्तियों की जननी हैं। भगवद् गीता[१] के अनुसार क्रोध और इसके पूर्वोक्त पर्यायों से बुद्धिनाश और अन्त में विनाश होना स्पष्ट है। क्रोध से सम्मोह होता है, सम्मोह से स्मृति विभ्रम, स्मृति भ्रंश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से प्रणाश–सर्वनाश होना, आन्तरिक पर्यावरण के प्रदूषित होने का स्पष्ट प्रमाण है। क्रोधवृत्ति के उत्तेजित होने की स्थिति में व्यक्ति की अपने हिताहित सोचने की शक्ति दब जाती है। यथार्थ निर्णय-क्षमता नहीं रह जाती। आत्मा पतनोन्मुखी बन जाती है। एक पाश्चात्य विचारक ने कहा है–क्रोध करते समय व्यक्ति की आँखें (अन्तर्नेत्र) बंद हो जाती हैं, मुँह खुल जाता है। अतिक्रोध से हार्टफेल भी हो जाता है।

मानववृत्ति से आन्तरिक पर्यावरण प्रदूषण

क्रोध के बाद मानवृत्ति का उद्‌भव होता है। अहंकार, मद, गर्व, घमण्ड, उद्धतता, अहंता, दूसरे को हीन और नीच मानने-देखने की वृत्ति आदि सब मानवृत्ति के ही परिवार के हैं, जिनका वर्णन हम पिछले पृष्ठों में कर आए हैं। इस कुवृत्ति से मानव दूसरे को हीनभाव से देखता है, स्वप्रशंसा और परनिन्दा करता है, जातीय सम्प्रदायीय उन्माद, स्वार्थान्धता आदि होते हैं, जिससे आन्तरिक पर्यावरण बहुत ही प्रदूषित हो जाता है। साम्प्रदायिकता का उन्माद व्यक्तियों को धर्मजनूनी बना देता है, फिर वह धर्म के नाम पर हत्या, दंगा, मारपीट, आगजनी, धर्ममन्दिरों या धर्मस्थानकों को गिरा देने अथवा अपने धर्मस्थानों का शस्त्रागार के रूप में उपयोग करके, आतंकवाद फैलाने आदि के रूप में करता है। इस प्रकार के निन्दनीय घृणास्पद कुकृत्यों को करते हुए उसे आनन्द आता है। ऐसे निन्द्य कृत्य करने वालों को पुष्पमालाएँ पहनाई जाती हैं, उन्हें पुण्यवान् एवं धार्मिक कहा जाता है। यह सब आन्तरिक पर्यावरण को प्रदूषित करने के प्रकार हैं।

माया की वृत्ति भी आन्तरिक प्रदूषणवर्द्धिनी है

माया की वृत्ति भी आन्तरिक प्रदूषण बढ़ाने वाली है। यह मीठा विष है। यह छल-कपट, वंचना, ठगी, धूर्तता, दम्भ, मधुर भाषण करके धोखा देना, वादा करके मुकर जाना, दगा देना इत्यादि अनेक रूपों में मनुष्य जीवन को प्रदूषित करती है। झूठा तौल-माप, वस्तु में मिलावट करना, असली वस्तु दिखाकर नकली देना, चोरी, डकैती, बेईमानी करना, लूटना, परोक्ष में नकल करना, नकली वस्तु पर असली वस्तु की छाप लगाना, ब्याज की दर बहुत ऊँची लगाकर ठगना, धरोहर या गिरवी रखी हुई वस्तु को हजम करना, झूठी साक्षी देना, मिथ्या दोषारोपण करना, किसी के रहस्य को प्रगट करना, हिंसादि वर्द्धक पापोत्तेजक, कामवासनावर्द्धक उपदेश देना, करचोरी, तस्करी, कालाबाजारी, जमाखोरी करना, आदि सब माया के ही विविध रूप हैं। किसी को चिकनी चुपड़ी बातें बनाकर अपने साम्प्रदायिक, राजनैतिक या आर्थिक जाल में फंसाना, चकमा देना, क्रियाकाण्ड का सब्जबाग दिखाकर या अपने सम्प्रदाय, मत, पंथ का बाह्य आडम्बर रचकर भोले-भाले लोगों को स्व-सम्प्रदाय मत या पंथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में आकर्षित करना; किसी को समकित या गुरु धारणा बदलवाकर अपने गुरु की समकित देना या गुरु धारणा कराना माया का प्रपंच है। माया किसी भी रूप में हो वह हेय है, परन्तु माया करने में कुशल व्यक्ति को व्यवहार कुशल, वाक्पटु या प्रज्ञाचतुर कहा जाता है। व्यावहारिक जगत् में तो वर्तमान में इस प्रकार की माया का बोलबाला है ही; धार्मिक जगत् भी इससे अछूता नहीं रहा। जैनागमों में बताया गया है कि मायी मिथ्यादृष्टि होता है। माया की तीव्रता होने पर मिथ्यात्व का उदय हो जाता है। संक्षेप में माया का आन्तरिक पर्यावरण को प्रदूषित करने में बहुत बड़ा हाथ है।

लोभवृत्ति : सर्वाधिक आन्तरिक प्रदूषण वर्द्धिनी

आन्तरिक पर्यावरण प्रदूषण बढ़ाने में इन सबसे बढ़कर है–लोभ। माया को उत्तेजित करने वाला लोभ ही है। लोभ के भी अनेक रूप हैं। माया के अन्तर्गत गिनाये हुए समस्त प्रदूषण लोभ के ही प्रकार हैं। इसीलिए लोभ को हिंसादि अठारह पाप स्थानों का जनक–पाप का बाप बताया गया है। इच्छा, तृष्णा, लालसा, वासना, कामना, प्रसिद्धिलिप्सा, पद लिप्सा, प्रतिष्ठा लिप्सा, जिह्वा लिप्सा आदि सब लोभ के प्रकार हैं। लोभ समस्त अनर्थों का मूल है। इन सबकी पूर्ति के लिए लोलुप मनुष्य बड़े से बड़ा कष्ट, संकट, विपत्ति, सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि की तकलीफ भी उठाने को तैयार हो जाता है। स्वार्थान्ध या लोभान्ध मानव अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए माता-पिता, भाई-भतीजा, पुत्र-पुत्री आदि को भी कुछ नहीं गिनता। धन के लोभ के वशीभूत होकर अपनी पत्नी, पुत्रवधू आदि को भी जलाने, मारने प्रताड़ित करने को उतारू हो जाता है। लोभी मनुष्य लज्जा, शिष्टता, ईमानदारी, धर्म आदि सबको ताक में रख देता है। धार्मिक स्थानों, मन्दिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों, तीर्थों, चर्चों आदि में भी लोभ-लालचियों ने अपना अड्डा जमा लिया है। अपरिग्रहवृत्ति और निःस्पृहता की दुहाई देने वाले सन्तों, महन्तों, साधु-संन्यासियों को भी तृष्णा नागिन ने बुरी तरह डस लिया है। उन पर भी लोभ का जहर चढ़ने से उनकी आत्मा मूर्च्छित हो रही है। अनुयायियों एवं भक्तों तथा शिष्य-शिष्याओं की संख्यावृद्धि करने का लोभ का भूत उन धर्म धुरन्धरों के सिर पर हावी हो रहा है। जिसके लिए अनेक प्रकार के हथकंडे अपनाये जाते हैं। इसके लिए वीतरागता एवं समता के मार्ग को भी दाव पर लगा दिया जाता है, धर्म सम्प्रदायों में परस्पर निन्दा पर परिवाद, अभ्याख्यान, द्वेष, वैर-विरोध आदि के पाप-प्रदूषणों का प्रसार भी क्षम्य माना जाता है। अध्यात्मजगत् में इन पर्यावरण प्रदूषणों के कारण शुद्धता, पवित्रता, शुचिता एवं संतोषवृत्ति आदि आज मृतप्राय हो रही है।

प्रमुख आन्तरिक प्रदूषणों के बढ़ जाने से भयंकर प्रदूषणों का प्रसार

इन चारों कषायों के होने वाले आन्तरिक प्रदूषणों के अतिरिक्त हास्य (हंसी-मजाक) रति-अरति (विलासिता और असंयम के प्रति प्रीति, सादगी और संयम के प्रति अप्रीति) शोक (चिन्ता, तनाव, उद्विग्नता आदि) भय (सप्तविध भयाकुलता) जुगुप्सा (दूसरों के प्रति घृणा, अस्पृश्यता, बदनाम करना, ईर्ष्या करना आदि) कामवासना (वेदत्रयाभिलाषा) इत्यादि नोकषाय भी भयंकर आन्तरिक प्रदूषण फैलाते हैं।

अहंकार और मद के आन्तरिक प्रदूषणों के बढ़ जाने से क्षमा, मृदुता, नम्रता, सरलता, सत्यता, शुचिता, मन-वचन-काय-संयम, सुख-सुविधा के साधनों पर नियंत्रण, आत्मदमन, देव-गुरु-धर्म के प्रति श्रद्धा-भक्ति, ब्रह्मचर्य भावना, त्याग-तप की वृत्ति, निःस्पृहता आदि आत्मगुणों का लोप होता जा रहा है। इसी कारण परिवार, समाज, राष्ट्र, धर्म सम्प्रदाय आदि में परस्पर कलह, संघर्ष, शोषण आदि पर्यावरण प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। सामान्यतया उपशम से क्रोध का, मृदुता (नम्रता) से मान का, ऋजुता (सरलता) से माया का और संतोष से लोभ का नाश करने का विधान है।

बाह्य और आन्तरिक प्रदूषणों को रोकने के लिए तीन उपाय

परन्तु दून बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार के प्रदूषणों को रोकने के लिए तीन तत्त्वों का मानव जगत् में होना आवश्यक है–(१) संयम, (२) समता और (३) समाधि।

असंयम ही पृथ्वी, जल आदि के बाह्य प्रदूषणों एवं क्रोधादि एवं रागादि वृत्तियों से होने वाले आन्तरिक प्रदूषणों को फैलाता है। इन्हें रोकने के लिए संयम (आस्रवनिरोधरूप तथा विषय-कषायादि त्यागरूप) का होना आवश्यक है।

इसके साथ ही विषमता, दानवता, पशुता और भेदभाव होने वाले बाह्य और प्रत्येक सजीव निर्जीव पदार्थ के प्रति प्रियता-अप्रियता, आसक्ति, घृणा, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वों से होने वाले आन्तरिक प्रदूषण के निवारणार्थ समता का होना आवश्यक है, जिससे मानवमात्र ही नहीं, प्राणिमात्र के प्रति समभाव, मैत्री आदि भावना जगे तथा रागद्वेषादि विभावों से निवृत्त होने के लिए ज्ञाता-द्रष्टाभाव, ज्ञानचेतना तथा समभाव जागे।

इसी प्रकार व्याधि, आधि और उपाधि से होने वाले बाह्य एवं आन्तरिक प्रदूषणों के निवारणार्थ समाधि का होना आवश्यक है। समाधि से शान्ति, तनावमुक्ति, आन्तरिक सन्तुष्टि आत्म-स्वरूपरमणता, आत्मगुणों में मग्नता आदि अनायास ही प्राप्त होगी। समाधिस्थ होने के लिए जप, तप, स्वाध्याय, अनुप्रेक्षा, भावना आदि आलम्बनों का ग्रहण करना आवश्यक है।

इस त्रिवेणी संगम में मानव जीवन बाह्य एवं आन्तरिक प्रदूषणों से विमुक्त एवं शुद्ध होगा। ● ●

१. क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृति-विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥ *–भगवद् गीता अ. २*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org